शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मार्च 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

जैन कर्मवाद का विश्लेषणात्मक अध्ययन

नीरू जैन (शोधार्थी)
डॉ. उग्रसेन पाण्डेय (निर्देशक)
विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग)
एस.आर.के. (पी.जी.) कॉलेज
फिरोजाबाद, उत्तरप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

भारतीय दर्शनशास्त्र में कर्म का सिद्धांत प्रमुख है प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक विविध प्रकार से कर्म और उससे प्राप्त होने वाले फल की चर्चा की गयी है। अवतारी महापुरुषों ने कर्म के विधान को अटल माना है। कर्म अत्यंत सूक्ष्म होते हैं वे न तो पकड़ में आते हैं और न ही दिखाई देते हैं। सामान्यजनों को यह विचित्र पहेली समझ में नहीं आती। भगवदगीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है प्रस्तुत शोध पत्र में जैन कर्मवाद का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना

भारत अध्यात्म प्रधान देश है। यहाँ के महापुरुषों ने आत्मा, कर्म, पुनर्जन्म, लोक, परलोक आदि विषयों पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर उसका शास्त्र सुधीजनों के सामने प्रस्तुत किया। यहाँ आस्तिकता की कसौटी, इस जीवन की कड़ी को परलोक के जीवन से जोड़ देती है। जो मत इस जीवन का अतीत और भावी जीवन के सम्बन्ध में स्थापित कर सके हैं। आज के किए गए, अच्छे बुरे कार्यों का कालान्तर में फल देना बिना माध्यम के नहीं बन सकता। इसी माध्यम को भारतीय दर्शन में कर्म, अदृश्य, अपूर्व, वासना, देव योग्यता आदि नामों से पुकारा जाता है। यदि कर्म को न माना जाए तो संसार में एक दुःखी एक सुखी, एक अमीर, एक गरीब एक को लाभ पर लाभ होना, एक को लाख प्रयास के बाद भी हानि होना आदि क्यों होते हैं। सामान्य भाषा में मनसा, वाचा, कर्मणा जो कुछ काम हम करते हैं उसे ही हम कर्म करते हैं। लगभग सभी धर्म कर्म को स्वीकार करते हैं। कुछ लोग इसे भाग्य कहते हैं। कुछ लोग इसे कर्मों का फल कहते हैं। कुछ अन्य लोग कहते है कि जैसा हम काम करते हैं, वह अपना संस्कार छोड़ता है तथा उसी के अनुसार प्रवृत्ति होती है। अतः स्पष्ट है कि "कर्म एक मूर्त पदार्थ है जो जीवन की राग-द्वेष, मोहरूप परिणति के कारण बन्ध को प्राप्त होता है।"

भारतीय दर्शन में कर्म

भारतीय दर्शन में कर्म स्वरूप विषयक निम्नलिखित मान्यताएं हैं :

1 मीमांसा दर्शन में कर्म - पूर्व मीमांसा दर्शन में कर्मों को करने का आदेश उनके फलों को दृष्टि में रखकर किया जाता है। कर्म और उसके परिणाम में एक प्रकार का सम्बन्ध रहना आवश्यक है। कर्म जो आज किया जाता है, वो परिणाम दिये बिना नष्ट नहीं होता।"[1]

2 सांख्य दर्शन में कर्म - इस दर्शन में कर्म को अन्तःकरण वृत्ति माना गया है। इसके मत से शुक्ल कृष्ण कर्म प्रकृति से विवर्त है। ऐसी प्रकृति का संसर्ग पुरूष से है। अतः पुरूष उन कर्मों का भोगने वाला होता है अर्थात् जो अच्छा या बुरा कार्य किया जाता है उनका संस्कार प्रकृति पर पड़ता है और प्रकृति उसका फल देने का कार्य करती है।

3 योग दर्शन में कर्म - क्लेश का मूल कर्माशय कर्म की वासना है, इसलिए वह इस जन्म में या जन्मान्तर में अनुभव में आती है। अविद्यादि रूप मूल के सद्भाव में जाति, आयु व भोग रूप कर्मों का विपाक होता है वे आनन्द व संताप प्राप्त करते हैं, क्योंकि उनका कारण पुण्य तथा अपुण्य है।

4 न्याय-वैशेषिक दर्शन में कर्म - इस दर्शन में अदृष्ट को आत्मा का गुण मानते हैं। यह गुण आत्मा में तब तक बना रहता है, जब तक उस कर्म का फल न मिल जाए। इस तरह इनके मत में अदृष्ट गुण आत्मनिष्ठ है। यदि यह कर्म वेदविहित कार्यों से उत्पन्न होता है तब वह धर्म कहलाता है, जब वह बुरे कार्यों से उत्पन्न होता है तो अधर्म कहलाता है। यह दर्शन सूक्ष्म शरीर में विश्वास नहीं रखता। मन परमाणु से बना होता है, इसलिए अतीन्द्रिय है। इसलिए शरीर छोड़ते समय दिखता नहीं है। इसलिये कर्मों को भोगने के लिए पुनर्जन्म लेना ही पड़ता है।

5 बौद्ध दर्शन में कर्म - इस दर्शन में जगत् की विचित्रता को कर्मजन्य माना गया है। यह कर्म चित्तगत वासना रूप है। अनेक शुभाशुभ क्रियाकलापों से ही चित्त में ऐसा संस्कार पड़ता है। जो क्षण प्रतिक्षण बढ़ता हुआ कालान्तर में सुखदुःख का कारण बनता है। बौद्ध दर्शन में कर्म को वैतसित कहा जाता है और उसे चित्त के आश्रित माना जाता है।

6 जैन दर्शन में कर्म - जैन दर्शन में कर्म की व्याख्या विलक्षण है। आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी ने लिखा है कि जीव के परिणामों को निमित्त पाकर पुद्गल का कर्म रूप में परिणमन होता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा है कि आत्मा का पुनः जन्म ग्रहण करना तथा दिशाओं और अनुदिशाओं में अनुसंचरण पुदगल के योग से होता है। जीवों का शरीर सूक्ष्मतर है। जैन दर्शन के अनुसार कर्म तथा आत्मा का अनादि सम्बन्ध है। कर्मों के कारण ही जीव पुनः एक साथ पैदा होता है जिसके कारण कषाय पैदा होती है और कषाय के कारण कर्मों का बन्ध होता है।

तत्वार्थ सूत्र में कहा गया है कि "कषाय के सम्बन्ध से जीव कर्म के योग्य पुदगलों को ग्रहण करता है। यह बन्ध होता है।"[2]

नियम सार की गाथा 38 में कहा गया है कि -

"जीवादि वहित्वच्चचं हेय, युवादेय मप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधि समुत्भव गुण, पंज्जाए हिं वदस्तिो।।"[3]

समयसार की गाथा 80 में कर्म की परिभाषा निम्न प्रकार है -

"जीव परिणाम दे दूं, कम्मत्व पुदगला परिणमति।
पुग्गल कम्मणिमित्तं, तहेव जीवोति परिणमई।।[4]

श्रीमद् भगवदगीता में कहा गया है -

"कर्मण्ये वाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचिनः।
मा कर्म फल हेतु भूर्मा, ते संगोऽरत्व कर्माणि।।[5]

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मार्च 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अर्थात् भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि ''कर्म करने में तेरा अधिकार है पर उसके फल पर तेरा कोई अधिकार नहीं है।"

1 जैन दर्शन के अनुसार कर्म के भेद - जैन दर्शन में कर्म के दो प्रकार कहे हैं (1) द्रव्य कर्म (2) भाव कर्म। द्रव्यकर्म - कर्म का भौतिक रूप है जबकि भाव कर्म - द्रव्य कर्म की चेतना को प्रभावित करने वाली शक्ति अथवा रागद्वेषादि विकार होते हैं। द्रव्य कर्म के आठ भेद बताए गए है।

क्रमांक	कर्म	कार्य	प्रतीक
1	ज्ञानावरण	ज्ञान को आच्छादित करना	कपड़ा
2	दर्शनावरणी	दर्शन को आच्छादित करना	द्वारपाल
3	वेदनीय	सुख दुःख का अनुभव करन	मधु लिप्त तलवार
4	मोहनीय	विवेक शून्य कर आचार और विचार शक्ति को रोकना	शराब
5	आयु	संसार को रोके रखना	खूंटा
6	नाम	चित्र विचित्र रूप बनाना	चित्रकार
7	गोत्र	उच्च, कुलीन व नीच घरों में पैदा होना	कुम्हार
8	अन्तराय	जीव की शक्ति को रोकना	भण्डारी

जैन कर्म सिद्धान्त की विशेषताएँ

1 द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की अपेक्षा रखकर ही कर्म अपना फल देते हैं।

2 कर्मों का फल कषायों की तीव्रता व मन्दता पर निर्भर करता है।

3 कर्मों का फल यथाकाल अथवा अन्यथाकाल दो प्रकार में मिलता है।

4 एक समय में बंधे हुए कर्म एक साथ अपना फल नहीं देते बल्कि अपने-अपने उदय के साथ फल देते हैं।

5 कर्मों के अवान्तर भेदों में परिवर्तन हो सकता हैं।

6 कर्म फल देने के बाद आत्म प्रदेशों से अलग हो जाते है। वे पुनः फल नहीं देते हैं।

समस्या कथन - ''भारतीय दर्शनों में जैन कर्मवाद''

अध्ययन का उद्देश्य - इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने अच्छे-बुरे कार्यों का लेखा-जोखा रखना चाहिऐ।

अध्ययन की परिकल्पना - जो व्यक्ति जैसा कर्म करेगा उसे उसी के अनुसार फल भोगना पड़ेगा।

शोध प्रारूप - प्रस्तुत अध्ययन में प्रश्नावली प्रविधि का प्रयोग किया गया है जो पूर्ण रूप से शोध से सम्बन्धित है। इसमें पूछे गए प्रश्नों को पूर्ण रूप से गोपनीय रखा गया है।

क्र	प्रश्नावली	सहमत	असहमत	शान्त
1	अच्छे बुरे कार्यों को कर्म कहा जाता है	60	20	20
2	भगवान कृष्ण के अनुसार ''व्यक्ति को कर्म के अनुसार ही फल मिलता है	70	20	10
3	आज किये गए अच्छे-बुरे कार्य, पुण्य-पाप, रूप में भविष्य में फल देते है	80	10	10
4	अदृष्ट, अपूर्व, वासना कर्म के पर्यायवाची है	80	20	
5	भारतीय दर्शनों में कर्मवाद की अलग-अलग मान्यताऐं है	70	30	

6	जैन दर्शन कर्म के अनुसार जन्म ग्रहण करने में विश्वास रखता है	50	40	10
7	जैन कर्मवाद के अनुसार कर्म तथा आत्मा का अनादि सम्बन्ध है	60	30	10
8	कर्म बन्ध का कारण कषाय करना है	55	35	10
9	मानव को प्रत्येक कार्य का फल स्वयं भोगना पड़ता है	60	30	10
10	जैन धर्मावलम्बी कर्म सिद्धान्त में विश्वास करते है	75	15	10
	कुल योग	660	250	90

विश्लेषण निम्न प्रकार किया जाता है।

कुल प्रश्न पूछे गये हैं =10

कुल व्यक्तियों का चयन किया = 100

कुल उत्तर प्राप्त हुए = 10 x 100 = 1000

सहमत व्यक्तियों का प्रतिशत = $\frac{660x100}{1000}$

= 66%

असहमत व्यक्तियों का प्रतिशत = $\frac{250x100}{1000}$

= 25%

शान्त व्यक्तियों का प्रतिशत = $\frac{90x100}{1000}$

= 9%

हमने प्रश्न पूछने के लिए 100 व्यक्तियों का चयन किया, जिसमें से 66 प्रतिशत व्यक्ति प्रश्नों से सहमत हैं, जबकि 25 प्रतिशत व्यक्ति असहमत है तथा 9 प्रतिशत इनके प्रति शान्त हैं। इससे पता चलता है कि अधिकांश व्यक्ति कर्म सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं।

निष्कर्ष

जैन नीति शास्त्रों में लिखा है कि "अयोग्यः पुरूषो नास्ति" अर्थात् हम पुरूष में नारायण बनने की शक्ति है, पर यह प्रकट विरलों में ही होती है। प्रत्येक व्यक्ति में अपार योग्यताएं एवं सम्भावनाएं छिपी रहती हैं, परन्तु किस व्यक्ति में कौन-सी योग्यता कब और कैसे प्रकट होगी, यह कोई नहीं जानता। किसी के गुण जल्दी प्रकट होते हैं किसी के गुण देर से प्रगट होते हैं। किसी के प्रकट ही नहीं होते। जैन धर्म शास्त्रों के अनुसार यही तो कर्म का विचित्र खेल है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 मां रत्न चन्द्रिका (ग्रन्थ) प्रधान सम्पादक - टीकम चन्द्र जैन प्रथम संस्करण (1990), प्रकाशक - आभा जैन, मालपुरा, पृष्ठ 356

2 जैन धर्म (पुस्तक), डॉ. सम्पूर्णानन्द (1960), प्रकाशक-मंत्री साहित्य विभाग, मथुरा, पृष्ठ 150

3 जैन धर्म की प्राचीनता, कर्म सिद्धान्त एवं आत्मा का स्वरूप (पुस्तक) लेखक महावीर प्रसाद जैन (2002) प्रकाशक श्री दिगम्बर जैन साहित्य प्रकाशन समिति, अलवर पृष्ठ 67

4 जैन धर्म और दर्शन (पुस्तक), मुनि श्री प्रमाण सागर जी महाराज (छटवां संस्करण-2000) प्रकाशक श्री पवन जैन, भोपाल, पृष्ठ 141

5 श्री मद्भगवद्गीता (पुस्तक) लेखक श्री स्वामी किशोर दास, कृष्णदास कृत- प्रकाशन -लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 44